Purva Mimaansa
A Multi-discipinary Bi-annual Research Journal
(Double Blind Peer Reviewed)

Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

निगमागम परम्परा के प्रमुख तत्त्व एवं विशिष्टाद्वैत दर्शन

डॉ0 अनुराग पाण्डेय

सारांश

भारतीय संस्कृति का यह अनुपम स्वरूपात्मक वैलक्षण्य है कि विभिन्न समयावधियों व परिस्थितियों में अपनी गत्यात्मकता को सार्थक बनाए रखने के दृष्टिकोण से यह स्वयं से ही विपक्ष तथा अन्ततः सम्पक्ष का निर्माण करती ही है। वैदिक वाङ्मय तथा तन्त्र परम्परा में ऐसे अनेकानेक तथ्य व तत्त्व हैं जो यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों में न्यूनतम प्रभाव व विस्तार के साथ उल्लिखित हुए तथापि कालान्तर में अपनी अक्षुण्णता को सँजोए रखते हुए अन्ततः महनीय स्थिति को प्राप्त हुए। इस न्यूनता से महत्ता को प्राप्त होने वाली विविध परिस्थितियों का कारण क्या रहा तथा किस प्रकार सामाजिक व दा निक परिस्थितियों के अनुकूल इन तत्त्वों की अनुप्रयोज्यता स्वीकार्य हो सकी, इत्यादि वे प्र न हैं जिनका उत्तर प्राप्त करने का प्रयास यह भाोधपत्र करता है। प्रस्तुत लेख इसी परिप्रेक्ष्य में वैष्णव वेदान्त तथा उसमें भी प्रमुख रूप से वि ाष्टाद्वैत द न की उन समस्त मान्यताओं यथा– विष्णु, भक्ति, देवार्चन पद्धति तथा वैदिक परम्परादि के अवगाहन हेतु उपजीव्य रूप में निगम व आगम परम्परा तथा कालान्तर में उनकी विविध विकसित होती भााखाओं के अन्तर्गत वर्णित विभिन्न तत्त्वों की खोज तथा उनकी स्वीकार्यता अथवा अस्वीकार्यता के सन्दर्भों का समुचित विवेचन प्रस्तुत करने का एक सत्प्रयास है।

भारतीय दा निक एवं सांस्कृतिक धरातल पर वि ाष्ट देवों की सामयिक महत्ता के आधार पर तत्सम्बन्धी वि ाष्ट पूजा–विधानों फलतः वि ाष्ट धर्म एवं तत्प चात् सम्प्रदायों के स्थापित होने का एक श्रृंखलाबद्ध इतिहास है जिनके आधार पर छः सम्प्रदाय प्रका ा में आए। इन छः सम्प्रदायों अर्थात् भौव, वैष्णव, भााक्त, गाणपत्य, कौमार व सौर में भी भौव, वैष्णव एवं भााक्त प्रमुख हैं। जिस सिद्धान्त के सर्वप्रधान देवता विष्णु माने गये तथा अन्य देवताओं को उनके अधीन बतलाकर जिस विधि–विधान व वि ाष्ट रीति से तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी, वह वैष्णव धर्म कहलाया। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो सर्वप्रथम सैन्धव सभ्यता में चक्र तथा स्वास्तिक जैसे प्रतीक चिन्हों का अंकन पाया जाता है जिनको परवर्ती काल में विष्णु के प्रतीक के रूप में मान्यता मिली तथा जिनका स्पष्ट अंकन गुप्तकालीन विष्णु–मूर्तियों में प्राप्त होता है। इसके प चात् के वैदिक कालीन ग्रन्थों में यज्ञ व कर्मकाण्ड की भावना से प्रादुर्भूत हुई प्रारम्भिक बहुदेववादी प्रकृति की एके वरवाद में परिणति होती है जिसमें आद्यान्त विष्णु का स्थान एक साधारण देव से अधिक नहीं था। इस सन्दर्भ में मैक्डानेल व ए0 बी0 कीथ जैसे विचारकों की विष्णु के साधारण देव के रूप में मान्यता का कारण विष्णु सम्बन्धी वैदिक ऋचाओं की न्यून संख्या है जिससे महर्षि अरविन्द व टी0 बी0 कपाल ाास्त्री जैसे आचार्य सहमत नहीं हैं क्योंकि उनके अनुसार इस तर्क में विष्णु के व्यक्तित्व व उनके कार्यों की उपेक्षा की गयी है।

दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

मानव अस्तित्व के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक की चिन्तन धारा तीन प्रकार की प्रविधियों पर आधृत रही है– स्वगत, समष्टिगत व परम्परागत। समस्त वैदिक साहित्यिक चिन्तन की पृष्ठभूमि स्वगत अर्थात् स्वानुभूति पर आधृत रही है। समष्टिगत चिन्तन तर्क–वितर्क व विम ार्दि पर केन्द्रित होता है जिसका उपयोग द र्ान, वि व की व्याख्या हेतु करता है जबकि परम्परागत प्रविधि के अन्तर्गत समस्त पूर्वकालिक चिन्तन को आधार या उपजीव्य मानकर किया गया चिन्तन आता है। वि ाष्टाद्वैत वेदान्त की चिन्तन–प्रविधि परम्परागत है। कारण यह है कि विशिष्टाद्वैत दर्शन सम्प्रदाय के मूलभूत उपजीव्य ग्रन्थ वेद, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता तथा वैष्णव आगम (संहिता, पांचरात्र तथा वैखानस) इत्यादि स्वीकृत हैं। इस सम्प्रदाय के अनुसार भगवान विष्णु ही ब्रह्म व परमतत्व हैं। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत वेदान्त में भगवान नारायण तथा महालक्ष्मी को ही ई वरतत्व के रूप में स्वीकृत किया गया है अतएव वैचारिक प्राचीनता की सम्यक् विवेचना व समीक्षा हेतु ऋग्वैदिककालीन विष्णु कौन हैं, इसके सन्दर्भ में इस भाब्द की भााब्दिक व्युत्पत्ति व एतदाधार पर अन्य भाब्दावलियों से इसके साम्य अथवा एकत्व का विवेचन किया जाना ही श्रेयस्कर होगा जिससे परमतत्व के वास्तविक स्वरूप व परवर्ती कालों में उनके परिवर्तित होते वै ाष्ट्य पर प्रका ा डाला जा सके। विष्णु का भााब्दिक अर्थ है 'फैलने वाला' (विश्लृ व्याप्तौ) तथा इसका एक अन्य अर्थ यज्ञ भी है तथा सम्भवतः इसी अर्थ में यज्ञ को भी विस्तारवान कहा गया है। यज्ञ से विष्णु के गहन सम्बन्धों को भी कई आधारों पर स्पष्ट किया गया है जिनमें से प्रमुख यह है कि जो विष्णु है, वही यज्ञ है। इसका एक अन्य अर्थ अग्नि भी है जिसका अभीष्ट लक्षण विस्तार ही है। अब ब्रह्म भाब्द के व्युत्पत्यार्थ पर ध्यान दें तो कालान्तर में एतत्सम्बन्धी विकसित हो रही वैचारिकी, जिसके अन्तर्गत विष्णु प्रतीकात्मक रूप में स्वरूपतः अग्नि व यज्ञ से होते हुए ब्रह्म की स्थिति को प्राप्त हो रहे थे, उसका स्वरूप अधिक मुखर हो उठता है। 'बृहन्तो हि अस्मिन् गुणाः इति ब्रह्म' अर्थात् जो निरन्तर वृद्धि वाला है तथा सर्वत्र व्याप्त है, वह ब्रह्म है। इसी सन्दर्भ में आचार्य रामानुज ने श्रीभाष्य में 'ब्रह्म' भाब्द का व्युत्पत्यार्थ करते हुए लिखा है कि 'सर्वत्र बृहत्वगुणयोगेन हि ब्रह्म ाब्दः। बृहत्त्वं स्वरूपेण गुणै च यत्रानवधिक्राति ायं सोऽस्य मुख्योऽर्थः। इसी प्रकार आचार्य भांकर ब्रह्म भाब्द की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में तैत्तिरीय उपनिषद् के भाष्य में 'बृहत्तम' अर्थ की पुष्टि करते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में वे भवेता वतर उपनिषद् के भाष्य में ब्रह्म भाब्द के उपरिलिखित अर्थ का ही पोषण करते हुए कहते हैं कि जो स्वयं बढ़ता है तथा प्रज्ञा को बढ़ाता है, वह ब्रह्म है। हालाँकि ब्रह्मसूत्रभाष्य में वे इस भाब्द के दा ानिक अर्थ की व्याख्या करते हुए इसे नित्य व भाुद्ध अर्थ का बोधक बतलाते हैं। सिद्ध है कि इन उक्तियों के परिप्रेक्ष्य में ही वैदिक देवता विष्णु को ब्रह्मतत्व के अर्थ में विकसित होने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ।

वस्तुतः वैदिक विष्णु के सन्दर्भ में एक वास्तविक तथ्य यह भी है कि विष्णु सूर्य या आदित्य ही हैं जो अपनी दिन की यात्रा तीन पग में पूरा करते हैं जिनमें प्रथम पग पृथ्वी में द्वितीय अन्तरिक्ष में व तृतीय पग अलौकिक माना गया है जिसे भौतिक नेत्रों से नहीं देखा जा सकता है। यही त्रिपग की अवधारणा ही परवर्ती काल में (ातपथ ब्राह्मण) वामनावतार में परिलक्षित होती है। इस प्रकार भााब्दिक व्युत्पत्यार्थ के साथ–साथ स्वरूप की दृष्टि से भी वे समस्त वि व में परिव्याप्त हैं।

उल्लेखनीय है कि सूर्य स्वयं अग्नि हैं। इस सन्दर्भ में ऋग्वेद में ही अर्थवाद के रूप में एक कथा का उल्लेख हुआ है जिसमें कहा गया है कि विष्णु के बढ़ते प्रभाव से चिन्तित होकर इन्द्रादि देवताओं ने उनका वध करने का विचार किया तथा इस क्रम में वे चींटियों के रूप में उस स्थान पर जाते हैं जहाँ विष्णु अपने प्रत्यंचा चढ़े धनुष को सिरहाने रखकर निद्रामग्न थे। देवताओं ने चींटियों के रूप में उस

Purva Mimaansa
A Multi-discipinary Bi-annual Research Journal
(Double Blind Peer Reviewed)

Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

धनुष की प्रत्यंचा को काट दिया फलस्वरूप धनुष के विमोचन के कारण उनकी ग्रीवा कट गयी तथा कटा हुआ वह सिर ही आका ालोक में अद्यतन सूर्य के रूप में स्थान प्राप्त कर रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि वैदिक व्यवस्था में वह मूल तत्व अग्नि ही विष्णु, यज्ञ तथा सूर्यादि विविध विकसित होते दैवीय स्वरूपों में परिलक्षित हो रहा था जो स्पष्टतया एकतत्ववाद का विकास–बीज है। इसी प्रकार ऋग्वेद में ही कहा गया है कि विष्णु में ही सभी देवताओं का नाम समाहित है। वेदों में विष्णु सम्बन्धी कतिपय मन्त्र उनके कार्यों व महत्ता के साथ भक्ति की स्वीकार्यता के तथ्य पर पर्याप्त प्रका ा डालते हैं साथ ही उन सिद्धान्तों पर भी जिनको विशिष्टाद्वैत द ान आधाररूप में स्वीकार करता है। ई वर–प्राप्ति का स्वर्णिम–माध्य स्वरूप अर्थात् आत्मनिवेदन के उपाय का भी वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होता है। पुनः ऋग्वेद भक्ति को मुक्ति के सर्वाधिक सहज व उत्कृष्ट उपाय के रूप में वर्णित करता है। व ाष्ठ के अनुसार विष्णु सृष्टि के सर्ग के सर्वज्ञ हैं तथा कोई भी देव उनके स्तर तक नहीं पहुँच सका है। ऋग्वेद में विष्णु कहीं पर इन्द्र के सहायक के रूप में तो कहीं 'इन्द्रस्य पूज्य सखा' कहकर इन्द्र से भी अधिक महान स्वीकार किए गए हैं। यहीं पर उल्लिखित है कि नारायण ने स्वयं समस्त जीवों को धारण किया था तथा यही वेदों के हिरण्यगर्भ या हिरण्यपिण्ड हैं। ऋग्वेद में इनके बारह रूपों का भी उल्लेख प्राप्त होता है साथ ही विष्णु की इसी व्यापकता को अभिव्यक्त करने के लिए इनकी स्तुति ऋग्वेद के कई सूक्तों में की गयी है। विष्णु की इसी व्यापकता को द ाते हुए ऋग्वेद विष्णु को परम पद के रूप में वर्णित करता है। इसी क्रम में तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि विष्णु की सेवा से ही कोई मनुष्य स्वास्थ्य, सम्पत्ति व सुरक्षा प्राप्त कर सकता है। मनुष्यों की सहायता के लिए उत्सुकता तथा उपकार करना उनके दो वि ाष्ट लक्षण बतलाए गए हैं। इसके अतिरिक्त वे पापना ाक व मुक्तिदाता के रूप में भी वर्णित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि विष्णु ही एकमात्र ऐसे वैदिक देवता हैं जो वेदों में सामान्य स्थिति में वर्णित होकर भी परवर्ती काल में त्रिदेवों के साथ महत्वपूर्ण अस्तित्व व मर्यादा बनाए रखते हैं। हालाँकि प्र न यह अव य उठता है कि विष्णु की ऐसी कौन सी मौलिक वि ोषता थी जो वैदिक काल में उभरकर सामने न आ सकी तथा जिसके कारण परवर्ती काल में वे इतनी महानता के साथ विकास करते हैं तथापि यह ऐतिहासिक वि लेषण का विषय है तथा जिसका प्रत्यक्ष उत्तर वैदिक–ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता है। परवर्ती वैदिक साहित्य में विष्णु सृष्टि विषयक भावना के केन्द्र के रूप में स्थापित होने के साथ–साथ अन्य महत्वपूर्ण रूपों में भी महनीयता को प्राप्त हुए। यद्यपि तैत्तिरीय आरण्यक के समय तक नारायण व विष्णु का समन्वय नहीं हो पाया था तथापि परवर्ती काल में यह समन्वय तो होता ही है साथ ही उपनिषदों के समय से वे भगवान के रूप में पूजनीय हो जाते हैं। कालान्तर में महाभारतकालीन श्रीकृष्ण के साथ विष्णु का भागवत सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में एकीकरण होता है जो उस समयावधि में वासुदेव के रूप में भागवत सम्प्रदाय के प्रधान देव के रूप में पूजित हो रहे थे, ऐसा पाणिनि के अष्टाध्यायी के 'भक्तिः' सूत्र के अधिकार में आने वाले 'वासुदेव अर्जुनाभ्याम् वुन्' सूत्र के आधार पर सिद्ध होता है। इस वर्णन से सिद्ध होता है कि पाणिनि के समय में भक्ति एक सामान्य तत्व के रूप में प्रचलित थी तथा वासुदेव में भक्ति रखने वालों को वासुदेवक कहा जाता था। हालाँकि कृष्ण का उल्लेख ऋग्वेद में 'कृष्ण मृग' नामक यज्ञ के रूप में आया है तथा छान्दोग्य उपनिषद् 'कृष्णाय देवकीपुत्राय' के रूप में उनका ऐतिहासिक–दा ानिक के रूप में वर्णन करता है तथापि वैदिक द ान में प्रस्तुत कृष्ण वस्तुतः विष्णु के भौतिकात्मक स्वरूप में ही वर्णित हैं, ऐसा मेरा मानना है। कालान्तर में विष्णुपुराण की रचना के समय तक यही वासुदेव स्वयं विष्णु के रूप में तथा विविध विकसित हो पूर्ववर्ती स्वरूपों से होते हुए ब्रह्म की स्पष्ट स्थिति को प्राप्त कर चुके थे। अब एतदुपरान्त आगम–परम्परा में इनके स्वरूप व विशिष्टाद्वैत वेदान्त की भावना की ऐतिहासिकता पर प्रका ा डालते

हैं।

वि व के समस्त धार्मिक सम्प्रदायों एवं भारतीय दा निक विचार–सरणि में साधना एवं साधना–पद्धति के बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग प्रकार निर्दिष्ट हैं। अधिकारि–भेद से कहें तो बहिरङ्ग साधना के विधि–विधानों में जहाँ सार्वभौमिकता के तत्त्व की प्रमुखता है तथा जिसका अधिकारी सर्वसाधारण होता है अर्थात् जहाँ अधिकारी की किसी वि ाष्ट योग्यता की अपेक्षा नहीं होती है वहीं अन्तरङ्ग साधना के विधि–विधान वि ाष्ट योग्यताधारी साधक के लिए ही विहित हैं। इस बहिरङ्ग साधना के द्योतक ग्रन्थ निगम अथवा वेद हैं जबकि अन्तरङ्ग साधना के बोधक ग्रन्थ तन्त्रागम हैं। इन दोनों साधना पद्धतियों के भेदों का प्रधान कारण ऐतिहासिक अध्ययन की सुगमता ही है क्योंकि वस्तुतः तो ये एक ही संस्कृति के समानान्तर पुरोगामी चरण हैं जिनसे सम्बन्धित जनमानस की धार्मिक व सांस्कृतिक आस्था भी उभयाश्रित ही है अतएव भारतीय द निन एवं संस्कृति के विविध पक्षानुपक्षों के आधार पर समस्त वैचारिकी के यथार्थबोध हेतु निगमागम का ज्ञान अभीष्ट है।

'तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन् इति तन्त्रम्' के आधार पर तन्त्र का तात्पर्यार्थ ज्ञान का विस्तार है तो 'कामिक आगम' की व्याख्या के अनुसार 'तन्त्र' भाब्द की निरुक्ति 'तन्' (विस्तार करना) तथा 'त्रै' (रक्षा करना) के योग से सिद्ध है अर्थात् तन्त्र भाब्द अर्थ–विस्तार के साथ–साथ साधकों के त्राण के अर्थ का भी द्योतक है। महाभारत में 'स्मृति च तन्त्राख्या परमर्शिप्रणीता' कहकर न्याय, धर्म ाास्त्र, योगादि के लिए तन्त्र भाब्द का प्रयोग किया गया है। स्वयं आचार्य भांकर अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य में पूर्वमीमांसा की समीक्षा के क्रम में 'प्रथम–तन्त्रे' भाब्द–समूह का प्रयोग करते हैं जिसका एक अर्थ यह हो सकता है कि द ान व तन्त्र परस्पर पूरक भाब्द की भाँति अनुप्रयोज्य थे। यही नहीं, वे सांख्य को भी तन्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं तथा सांख्यकारिका के 70वें भलोक में सांख्य भी स्वयं को तन्त्र के रूप में प्रेषित करता है। इसी भाँति न्याय–वैषेशिक व अन्य द ान भी तन्त्र कहे गये हैं।

तन्त्र का ही दूसरा नाम आगम है। तन्त्र भाब्द के विस्तीर्णार्थ का परिचय इस आगम के व्युत्पत्यार्थ से ग्रहण किया जा सकता है जहाँ वाचस्पति मिश्र योगभाष्य की तत्त्ववै ाारदी व्याख्या में आगम भाब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखते हैं 'आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मादभ्युदयनिःश्रेयसोपायाः स आगमः' अर्थात् जिससे अभ्युदय व निःश्रेयस के उपाय बुद्धि में आते हैं, वह प्रतिपादक भाास्त्र आगम कहा गया। इस प्रकार जहाँ निगम कर्म, उपासना व ज्ञान के स्वरूप का उल्लेख करते हैं वहीं आगम उनके साधनभूत उपायों का दिग्द ान कराते हैं। इस प्रकार निगम व आगम परस्पर उपकारक भाास्त्र हैं। निगम जिस अद्वैत तत्त्व के स्वरूप की व्याख्या करते हैं, आगम उसी तत्त्व की साधना व साधना के प्रकारों की व्याख्या करता है। प्रथम उसी तत्त्व का सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत करता है तो अन्य व्यावहारिक पक्ष। इस प्रकार आगमों का मुख्य विषय वैदिक–ग्रन्थों में निर्दिष्ट ज्ञान का क्रियात्मक आचार ही है। पुनः निगम व आगम ग्रन्थों में एक अन्य भेद यह भी प्राप्त होता है कि निगम के सिद्धान्त व कर्मकाण्ड जहाँ त्रिवर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वै य) तक ही सीमित हैं, वहीं आगम प्रत्येक वर्ण के लिए साधना के द्वार खोल देता है। आगम भाास्त्र दो प्रकार के हैं– वे आगम ाास्त्र जिनके सिद्धान्त व आचार वेदमूलक हैं, उन्हें वेदानुकूल तन्त्र तथा जिन आगमों के आचार व पूजा–पद्धतियाँ वैदिक पद्धति से भिन्न हैं, उन्हें वेदबाह्य तन्त्र कहा गया है। इसी आधार पर पांचरात्र व भौवागमों को तथा भााक्ततन्त्र के सप्तविध आचारों (वेदाचार, वैष्णवाचार, भौवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार एवं कौलाचार) में वामाचार को प्राचीन ग्रन्थों में वेदबाह्य कहा गया है।

Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

तन्त्रों के तीन मुख्य भाग हैं–ब्राह्मणतन्त्र, बौद्धतन्त्र, तथा जैनतन्त्र। पुनः उपास्य देवता की भिन्नता के कारण ब्राह्मणतन्त्र भी तीन प्रकार के होते हैं– वैष्णवागम (पांचरात्र), भौवागम व भााक्तागम तथा इनसे सम्बन्धित परादेवता भी क्रम ाः विष्णु, ि ाव व भाक्ति हैं। दा ानिक सिद्धान्तों के भेद से आगम द्वैत–प्रधान, द्वैताद्वैत–प्रधान तथा अद्वैत–प्रधान हैं। रामानुज के अनुसार पांचरात्र विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादक है। भौवागम में तीनों ही मत पाए जाते हैं जबकि भााक्तागम में सर्वथा अद्वैत तत्त्व का ही प्रतिपादन मिलता है। वैष्णव आगमों के वैखानस, पांचरात्र व भागवत नामक तीन भेद स्वीकार किए जाते हैं, परन्तु वर्तमान में इनके पारस्परिक–भेदों को बतलाने वाला कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है तथा ऐसा माना जाता है कि भागवत सम्प्रदाय का पूरी तरह समावे ा भक्ति–सम्प्रदाय में हो चुका है। ये त्रिविध वैष्णव संहिताएँ ही वैष्णवाचार्यों के दा ानिक विचारों की उर्वरा भूमि रही हैं।

कतिपय विद्वान तर्कतः यह सिद्ध करते हैं कि तन्त्र अथवा आगम परम्परा बौद्ध के परवर्ती काल में प्रादुर्भूत हुई है परन्तु स्वयं भगवान बुद्ध द्वारा तन्त्र–पद्धति का खण्डन किए जाने, जिसका उल्लेख ललितविस्तर के 17वें अध्याय में है, से यह सिद्ध होता है कि तन्त्रागम बौद्धों के परवर्ती काल में विकसित परम्परा नहीं है। इस प्रकार आगम–परम्परा का विकास बौद्धों अथवा जैनियों की परम्परा के विरोध में तो नहीं हुआ तथापि इन अवैदिक सम्प्रदायों के आविर्भाव का परिणाम यह अव य हुआ कि वैदिक–परम्परा के विरोध के परिणामस्वरूप कालान्तर में वैदिक व्यवस्था के विरोध में उत्पन्न हुए आन्दोलनों की प्रतिक्रिया के रूप में पूर्व में विकसित हुई तन्त्रागम परम्परा को वैदिक–परम्परा से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास अव य किया गया था। इसी क्रम में वैदिक एवं अवैदिक परम्परा के वर्गीकरण की सहायता ली गयी तथा जैन एवं बौद्ध के साथ–साथ सांख्य–योग एवं पा ुपत व पांचरात्रादि मतों को अवैदिक बतलाकर उन्हें अग्राह्य बतलाया गया। उदाहरण के लिए पूर्वमीमांसा में स्मृति, पुराणादि को वेदानुमोदित होने पर ही प्रामाण्य माना गया है। यही नहीं, आचार्य भांकर ने भी ब्रह्मसूत्र के तर्कपाद पर भाष्य करते हुए वेदों की सर्वश्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयास किया है जिसका परिणाम यह रहा कि परवर्ती काल में वैष्णवों व भौवों ने भी स्वमत को वैदिक सिद्ध करने का अथक प्रयास किया। वर्गीकरण के इन दो मतों के प्रका ा में कालान्तर में समन्वयवादिनी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ जिसके अन्तर्गत विविध पुराणों, भाारदातिलक व प्रपंचसार जैसे आगम–ग्रन्थों की रचना हुई। जैन व बौद्ध ग्रन्थों को छोड़कर अन्य सभी ग्रन्थ परम्पराओं पर इसका सीधा प्रभाव पड़ा तथा एक नवीन परम्परा के रूप में स्मार्त परम्परा का जन्म हुआ। आचार्य भांकर–कृत प्रपंचसार व भाारदातिलक में प्रस्तुत आगम–परम्परा के उत्स की आनुपूर्वी का इतिहास कितनी प्राचीनता को स्वयं में समावेि ात किए हुए है यह वस्तुतः पृथक भोध–विशय है तथापि इसकी एक झलक पद्मपादाचार्य की टीका में इस रूप में प्राप्त होती है कि 'प्रपंचसार की रचना समस्त आगम–ग्रन्थों के सारसंग्रह रूप प्रपंचागम के सार को संगृहीत कर की गयी है। अब वैष्णव–परम्परा की वैखानस व पांचरात्र नामक दो आगमिक धाराओं पर प्रका ा डालना आव यक है।

वैष्णव देवालयों के अर्चकों की एक जाति–वि ोष अथवा सम्प्रदाय का नाम वैखानस है क्योंकि इनका मानना है कि इनका जन्म, अस्तित्व व व्यक्तित्व विष्णु–अर्चन जैसे कर्तव्य के सम्पादनार्थ ही है। वैखानस–सूत्र ही इनके आध्यात्मिक व गृह–सम्बद्ध विविध क्रियाकलापों के आधार हैं तथा देवाराधन के साथ–साथ जीवन के समस्त क्रियाकलापों अर्थात् 18 संस्कारों व 26 यागों (पाँच महायाग, सात पाकयाग, सात हविश् याग एवं सात सोम याग) के सम्पादन का कार्य ये श्रौत–प्रक्रिया अर्थात् वैदिक–रीति व मन्त्रादि के अनुसार करते हैं तथैव ये स्वयं को भाुद्ध रूप से वैदिक कहते हैं। वैखानस

के सामान्य परिचयक्रम में तो ब्रह्मा को विखनस् (यजुर्वेद की एक भााखा कृष्ण–यजुर्वेद तैत्तिरीय भााखा के रूप में वैखानस–सूत्रों का प्रणयन करने वाले मुनि) कहा गया है परन्तु वि ोषार्थ में (विष्णु के प्रथम पुत्र ब्रह्मा ही प्रथम ऋषि थे जिन्हें मन का खनन कर धार्मिक ज्ञान का प्रवर्तन करने के कारण विखनस् कहा गया–खननाद्विखनामुनिः, खननं तत्त्वमीमांसेत्याहुः, निगमार्थानां खननादिति नः श्रुतम्) तथा क्रियाधिकारादि ग्रन्थों के आधार पर विखनस् भगवान विष्णु ही हैं। वैखानस वैष्णव सम्प्रदाय का सम्बन्ध कृष्ण–यजुर्वेद की तैत्तिरीय भााखा से है। यद्यपि वर्तमान में वैखानसों की गणना वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही की जाती है तथापि कतिपय ऐसी मान्यताएँ, परम्परागत रीति–रिवाज, व्यवहार व दा ानिक सिद्धान्त हैं जो वैखानसों को वैष्णवों से पृथक करती हैं। उदाहरण के लिए वैखानस सम्प्रदाय के लोग अपनी गुरु–ि ाष्य परम्परा में रामानुजाचार्य व आलवारों को नहीं स्वीकार करते हैं तथा न ही वे तमिल–प्रबन्धादि का पाठ ही करते हैं। हालाँकि वैखानसों के आचार्य श्रीनिवास मखी ने (1058–1107 ई0) ब्रह्मसूत्र पर वैष्णव सिद्धान्तों के आधार पर 'लक्ष्मीवि ाष्टाद्वैतभाष्य' अव य लिखा है तथापि यह ग्रन्थ आचार्य रामानुज के 'श्रीभाष्य' से सैद्धान्तिक मतवैभिन्यता रखता है। वैखानस समर्पण एवं भक्ति को नहीं अपितु भक्तिपूर्वक समूर्त–अर्चन को सर्वोपरि आराधना स्वीकार करते हैं। पुनः इनके मत में ब्रह्मविद्या की उपासना की अपेक्षा भक्तिपूर्वक की गई मूर्ति–आराधना उत्तम है। आलवारों ने जिन मन्दिरों में वैष्णव–आन्दोलन चलाए थे उन्हीं देवालयों में वैखानस मूर्ति–पूजन व अर्चन सम्पादित करते हैं। इस प्रकार आलवारों द्वारा स्थापित की गयी मूर्ति–पूजा की परम्परा का प्रारम्भ वस्तुतः वैखानसों ने ही किया है। हालाँकि वैखानसों ने आलवार आन्दोलन की अनेक सैद्धान्तिक मान्यताओं को आत्मसात् किया तथापि वे अर्चना–पद्धति के रूप में सभी वर्णों को स्थान नहीं प्रदान कर सके जबकि पांचरात्र कम से कम गृहार्चा के सम्बन्ध में सभी वर्गों को लिए साधना का मार्ग प्र ास्त करता है। सम्भवतः यह एक महत्त्वपूर्ण कारण था कि वि ाष्टाद्वैती आचार्यों ने तत्कालीन समय व परिस्थिति में पांचरात्र की अधिक अनुप्रयोज्यता पायी तथा उसका विस्तार किया। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि क्योंकि वैखानस अर्चन–पद्धति में भाुद्ध रूप से वैदिक मन्त्रों का प्रयोग करते हैं अतएव ये विष्णु को पूर्णतया वैदिक देव तथा सर्वोपरि तो स्वीकार करते ही हैं साथ ही वैदिक अनुष्ठान विधि के अनुसार वे अग्नि–आराधन पर भी बल देते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण ग्रन्थों में गृहार्चा तथा आलयार्चा दोनों का ही विधान है अतएव वैखानस भी गृह तथा देवालय दोनों ही स्थानों पर अग्नि–आराधन तथा मूर्तिपूजा को अनिवार्य व परस्पर–पूरक बताते हैं। सर्वथा महत्वपूर्ण प्र न यह है कि वैखानसों के द्वारा विष्णु व अग्नि के पृथक अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी विष्णु की अर्चना तथा अग्नि–आराधन की प्रक्रिया के साथ–साथ सम्पादित किए जाने की अनिवार्यता का क्या प्रयोजन हो सकता है। सम्भवतः इसका प्रमुख कारण यह हो सकता है कि इस काल तक सैद्धान्तिक रूप में वैदिक विष्णु व अग्नि के पृथक अस्तित्व को सर्वथा स्वीकार नहीं किया जा सका था। भौव व पांचरात्रागमिक समय की आव यक माँग के अनुरूप वैदिक प्रक्रिया की व्यावहारिकता में ि ाथिलता के कारण आगमिक प्रक्रिया अपनाते हैं जबकि वैखानस स्वयं को आगमिक नहीं कहते हैं। हालाँकि कतिपय विचारकों ने सम्भवतः पांचरात्र व भौवागमों से विभेद स्थापित करने के क्रम में वैखानस के साथ आगम भाब्द का प्रयोग कर दिया है तथापि स्वयं प्राचीन स्मृतिकार भी वैखानस के वैदिकत्व को स्वीकार करते हैं।

वस्तुतः जितना प्राचीन वैदिक साहित्य है विष्णु–स्तवन की परम्परा उससे कम प्राचीन नहीं है। वैदिक ऋषि नारायण के साथ वैदिक देवता विष्णु कब एकार्थक हो गए यह कहा जाना कठिन है परन्तु यह सर्वथा स्पष्ट है कि पांचरात्रागम की परम्परा में विष्णु, नारायण, वासुदेव व कृष्णादि भाब्द एकार्थक

Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

होकर पर्याय के रूप में प्रयुक्त होने लगे थे। पांचरात्र सम्प्रदाय का सर्वाधिक प्राचीनतम प्रतिपादक स्थल महाभारत के भाान्तिपर्व का मोक्षधर्मपर्व माना जाता है जिसके तीन सौ चौतीसवें अध्याय से लेकर तीन सो इक्यानवें अध्याय तक के अट्ठारह अध्यायों में 'नारायणीयोपाख्यान' उपनिबद्ध है, जिसका अपना वैि ाष्ट्य है क्योंकि महाभारत का परम तात्पर्य होने के कारण पांचरात्र का वैदिकत्व यहीं से सिद्ध हो जाता है। पुनः महाभारत का भाान्तिपर्व पांचरात्र के वक्ता के रूप में नारायण को स्वीकार करते हुए इसकी स्वतःप्रामाणिकता को सिद्ध करता है। पांचरात्र का मूल वेदों की एकायन भााखा ही है परन्तु स्वयं एकायन भााखा तथा एतत्सम्बन्धी कोई भी ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध नहीं है अतएव पांचरात्र की श्रुतिमूलकता सिद्ध करना एक दुष्कर कार्य है तथापि कतिपय ऐसे प्रसंग हैं जिनसे पांचरात्र, एकायन तथा वेदों के सम्बन्धों पर प्रका ा अव य डाला जा सकता है। ई वरसंहिता, जयाख्यसंहिता तथा लक्ष्मीतन्त्र में कई ऐसे उद्धरण प्राप्त होते हैं जिनसे यह पता चलता है कि एकायन भााखा का यजुर्वेद की काण्व–माध्यन्दिन भााखा से सम्बन्ध अव य था तथापि छान्दोग्योपनिशद् के द्वारा एकायन का चारों वेदों से पृथक उल्लेख किए जाने से यह सिद्ध होता है कि एकायन वेदों से पृथक भाास्त्र है। पांचरात्र, एकायन तथा पुरुषसूक्त, इन तीनों का ही सम्बन्ध नारायण से है क्योंकि वही पांचरात्र के आदिवक्ता, एकायन के उपदे ाक तथा पुरुषसूक्त के ऋषि हैं। इस आधार पर विद्वानों के द्वारा तीनों की सजातीयता का उल्लेख अद्यतन किया जाता रहा है। हालाँकि भातपथ ब्राह्मण के काल तक नारायण व पुरुषसूक्त के देवता पुरुष का एकत्व हो चुका था यह तथ्य पुरुष तथा नारायण दोनों के सर्वाति ाायित्व, पुरुषमेध यज्ञ के प्रतिपादन तथा पंचरात्र क्रतु से उनकी समानतादि से सिद्ध होता है।

वैष्णव–सम्प्रदाय के दोनों ही आगम वैष्णव देवताओं की आराधन–प्रक्रिया, आचार सम्बन्धी विषयों के साथ–साथ समूर्त–अर्चन के माध्यम से वैष्णवों के लिए भुक्ति तथा मुक्ति का मार्ग प्र ास्त करने तथा अग्नि–आराधनादि विषयों में परस्पर समान हैं। यहाँ तक कि दोनों ही निःश्रेयस की प्राप्ति हेतु कतिपय अवान्तर भेदों के साथ अष्टांग–योग को सर्वप्रमुखता से स्वीकार करते हैं। वस्तुतः इनका मुख्य भेद दोनों ही सम्प्रदायों के प्रवक्ता तथा प्रवर्तकों के रूप में ही है। वैखानस आगम के मुख्य प्रवक्ता तथा प्रवर्तक भगवान विखनस कहे गये हैं जिनकी परम्परा को वि ाष्ठ, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, अत्रि, भृगु व क यपादि ऋषियों ने आगे बढ़ाया। पांचरात्र के प्रवर्तक के सन्दर्भ में ई वरसंहिता कहती है कि स्वयं भगवान विष्णु ने मूलवेदानुसार सात्वत, पौश्कर व जयाख्य नामक तीन दिव्य भाास्त्रों का प्रवर्तन किया जो एकमात्र मोक्षोपाय का वर्णन करने के कारण ऐकान्तिक भाास्त्र कहे गये। स्वयं भगवान विष्णु द्वारा प्रकीर्तित किए जाने से इन भाास्त्रों को दिव्य तथा संकर्षण, भााण्डिल्य, जैमिनि तथा भृगु इत्यादि ऋषियों द्वारा लोकहितार्थ प्रकीर्तित किए जाने के कारण इन्हें मुनिभाषित, इन दो वर्गों में विभाजित किया जाता है।

भृगु द्वारा विरचित 'खिलाधिकार' नामक ग्रन्थ के आधार पर वैखानस का वैदिकत्व व पांचरात्र का आगमिक होना स्पष्ट प्रतीत होता है। हालाँकि यह ग्रन्थ स्वयं वैखानस सम्प्रदाय से सम्बद्ध है अतएव मात्र इस आधार पर पांचरात्र का अवैदिक होना सिद्ध नहीं हो जाता है। कतिपय विद्वानों ने विभिन्न तर्कों के आधार पर पांचरात्र को आगमिक अतएव अवैदिक कहने का प्रयास किया है, हालाँकि यह एक प्रयास मात्र ही है। उदाहरण के लिए स्वयं पांचरात्र में तान्त्रिक मन्त्रों तथा उनके तान्त्रिक प्रयोग का विधान प्राप्त होता है। वैखानस जहाँ यज्ञादि क्रियाविधानों में वैदिक मन्त्रों का ही प्रयोग करते हैं वहीं पांचरात्र आगम में वैदिक व तान्त्रिक दोनों ही प्रकार के मन्त्रों के प्रयोग का विधान पाया जाता है। पांचरात्र में आग्नेय प्रकार के मन्त्र भी पाए जाते हैं जिनका प्रयोग मारण, मोहन तथा उच्चाटनादि के

लिए किया जाता है। स्वयं पांचरात्रागम में मन्त्रों के तीन प्रकार बताए गए हैं–1. सौम्य 2. आग्नेय तथा 3. सौम्याग्नेय। कोई भी मन्त्र यदि नमस्कारान्त हो तो सौम्य, हुंकार, फट्कार अथवा स्वाहाकार हो तो आग्नेय तथा यदि मन्त्रों का दोनों ही प्रकारार्थ प्रयोग किया जा सके तो वे मन्त्र सौम्याग्नेय कहे जाते हैं। अब यदि तान्त्रिक मन्त्रों के होने मात्र से सम्पूर्ण वाङ्मय के अवैदिक होने को प्रमाण माना जाए तो स्वयं अथर्ववेदादि संहिताएँ अवैदिक हो जायेंगी। वस्तुतः पांचरात्रागम का वाङ्मय वैखानस की अपेक्षा कहीं अधिक वि ाल है तथा वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों ही प्रकार के मन्त्रों के प्रयोग का विस्तृत अर्थ में प्रयोजन इहलौकिक व पारलौकिक दोनों ध्येयों की ओर संकेत करने का भी हो सकता है।

भाास्त्रों में दीक्षा–प्रक्रिया भी एक संस्कार है जिनके स्वरूप में वैखानस व पांचरात्रागमों की प्रक्रिया में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। वैखानस जहाँ दीक्षा–प्रक्रिया का विधान करते हुए गुरु–ि ाष्य परम्परा से पृथक बालक के स्वयं भगवान विष्णु द्वारा दीक्षित होने तथा गर्भचक्र संस्कार अर्थात् गर्भ में ही दीक्षित होने की मान्यता रखते हैं वहीं पांचरात्रागमिक एतत्सन्दर्भ में श्रौत–परम्परा द्वारा सुनि चत प्रक्रिया का अनुकरण करते हैं। इस प्रकार यह दीक्षा पुण्योदय के उपरान्त व्यवस्थित गुरु द्वारा अनेक क्रियाकलापों के माध्यम से यजमान को प्रदान की जाती है। पुनः पांचरात्र व वैखानस मतों का सर्वप्रमुख अन्तर मोक्ष के स्वरूप के सन्दर्भ में है। वैखानस आगम संसार–बन्धन की वासना से मुक्ति को मोक्ष का स्वरूप बताता है। समाराधन के रूप में यहाँ मोक्ष चार प्रकार का है अर्थात् मोक्ष के स्वरूप व प्राप्ति में तारतम्य पाया जाता है। मुक्त जीव अपनी समाराधना के अनुरूप ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। समाराधना के चार प्रकार हैं– 1. जप 2. हुत 3. अर्चना एवं 4. ध्यान। इनमें भी अर्चना रूपी समाराधन को सर्वार्थसाधक अतएव सर्वोत्कृष्ट कहा गया है। पुनः अपनी समाराधना के अनुरूप ही साधक 1. सालोक्य 2. सामीप्य 3. सारूप्य अथवा 4. सायुज्य लाभ में से किसी एक को प्राप्त करता है।

पांचरात्रागम वाङ्मय में अहिर्बुध्न्यसंहिता एवं लक्ष्मीतन्त्र महत्वपूर्ण हैं जहाँ अप्राकृत दे ावि ोषप्राप्तिपूर्वक परिपूर्ण ब्रह्मानन्दानुभव को मोक्ष कहा गया है। इसी सन्दर्भ में जयाख्यसंहिता कहती है कि अनादिवासनायुक्त जीव के सभी कर्मों की निवृत्ति से स्वस्वरूपज्ञान का विकासलाभ होने के बाद ब्रह्मसमापत्ति ही मोक्ष है जो कि अपुनर्भवरूप है। कुछ सामान्य भेदों को छोड़ दें तो सर्वत्र भक्तिपूर्वक परमात्मज्ञान को ही मोक्ष कहा गया है। ज्ञान के उपर्यन्त माया की निवृत्ति हो जाती है जिसके लिए भगवत्कृपा को कारण माना गया है। लक्ष्मीतन्त्र में लक्ष्मी की अनुग्रहात्मिका भाक्ति को ही ब्रह्मप्राप्ति का साधन स्वीकार किया गया है परन्तु भाुद्धविद्या के माध्यम से संकोच त्याग कर प्रद्योदित होकर बन्धनमुक्त होना ही अन्ततः ग्रन्थ का अभीष्टाभिमत है। अहिर्बुध्न्यसंहिता में मोक्ष के उपाय के रूप में सांख्य तथा योग में वर्णित अ ाक्त पुरुष के सर्वत्यागरूप न्यासयोग को ही मोक्ष का साधन बतलाया गया है। यह न्यासयोग ही प्रपत्ति, प्रपदन, भारणागति आदि पदों से अभिहित है। यहीं पर भारणागति के छः स्वरूपों की भी चर्चा है जिसे विशिष्टाद्वैत द ीन ठीक उसी रूप में स्वीकार कर लेता है। एतदनन्तर दोनों ही आगमों में वर्णित परमतत्व के स्वरूप पर विचार किया जाना आव यक होगा।

पांचरात्र परम्परा के अन्तर्गत ई वर के चार रूप माने गए हैं– 1. पर 2. व्यूह 3. विभव तथा 4. अर्चा। हालाँकि अहिर्बुध्न्यसंहिता में अन्तर्यामी रूप को स्वीकार करते हुए पाँच रूपों की कल्पना की गयी है। ई वर का पर रूप ही वासुदेव है जो सृष्ट्यादि व्यापार हेतु वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध, इन चार प्रकार के रूपों को धारण करता है। वैखानस आगम में विष्णु को ही परमतत्व (ब्रह्म) स्वीकार कर लिया गया है। ब्रह्म के मूर्त व अमूर्त अथवा क्षर एवं अक्षर दो तत्व कहे गये हैं जिनमें अक्षरतत्व परब्रह्म तथा क्षरतत्व सम्पूर्ण जगत है तथा इन्हीं आधारों पर भगवदाराधन के भी दो रूप अमूर्त व समूर्त

किए गए हैं। यागकर्म में अग्नि में हवन रूप आराधन जिसे अर्चन कहा जाता है, को अमूर्ताराधन तथा मन्दिरों की प्रतिमादि की आराधना को समूर्ताराधन कहा गया है। विमार्चनकल्प तथा खिलाधिकार में बतलाए गए परमतत्व के स्वरूप के आधार पर कहा जा सकता है कि वासुदेवाख्य परमतत्व विष्णु औपनिषदिक ब्रह्मतत्व के समान ही हैं जिनकी तुलना कठोपनिषद् के ब्रह्मतत्व से की जा सकती है। प्रस्तुत आगम में नारायण सगुण तथा निर्गुण उभयविध स्वीकृत हैं जो सगुण होने के साथ–साथ अद्वैत वेदान्त के ब्रह्म की भाँति निश्कल तथा निर्गुण भी हैं। यहाँ तक कि भगवान के अस्त्रों के रूप में माया तथा अविद्या का उल्लेख भी किया गया है। कुल मिलाकर वैखानसों के द्वारा मान्य ब्रह्म न तो अद्वैत वेदान्त के द्वारा मान्य ब्रह्म की भाँति सर्वथा निर्गुण है तथा न ही आचार्य रामानुज द्वारा स्वीकृत तथा विशिष्टाद्वैत द्वारा प्रतिपादित चिदचिद्वि ष्ट अद्वैत ब्रह्म की भाँति है। इन दोनों ही दृष्टियों से विलक्षण वैखानस द्वारा प्रतिपादित नारायणतत्व वस्तुतः व्यावहारिक क्रियाकलापादि तथा सम्पादन–सौकर्य के साथ–साथ आलय–अर्चा की प्रवृत्ति के लिए सगुण तथा परमार्थतः निष्फल तथा निर्गुण है।

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर यदि समीक्षात्मक विवेचन के द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है कि वेदों व आगम–ग्रन्थों से प्रवाहित होती हुई इस धारा के किन तत्वों को विशिष्टाद्वैत के आचार्यों द्वारा स्वीकार किया गया तथा विविध परिस्थितियों में कौन–सी वि ष्टताओं का परिमार्जन अथवा परिष्करण किया जा चुका है साथ ही यह भी कि इनमें कौन–सी वि ष्टताएँ गौण हो चुकी हैं। आचार्य रामानुज ने किन तत्वों को आचार्य–परम्परा में आलवारों से प्राप्त किया तथा निगम व आगम से ली गईं पांचरात्र व वैखानस की कौन–सी वि ष्टताएँ विशिष्टाद्वैत द र्न की आधारि ला के रूप में स्थान पा सकीं तथा ऐसा होने की कारणभूत क्या सामाजिक, राजनैतिक एवं दा निक परिस्थितियाँ थीं, इत्यादि प्र नों का उत्तर पृथक भोध का विशय है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. आपथयो विपथयो अंतस्पथा अनुपथाः; एतेभिः मह्यं नामभिः यज्ञं विस्तार ओहते। ऋग्वेद, 5.52. 10।
2. यो वै विष्णुः स यज्ञः, तैत्तिरीय संहिता, 1.7.4 : यज्ञोऽहं वै विष्णुः तथा जैमिनीय ब्राह्मण, 2.68। भातपथ ब्राह्मण, 5.2.6.3।
3. त्वं अग्ने इंद्रो वृशभः सतामसि त्वं विष्णुः उरुगायो नमस्यः। पूर्वोक्त कृति, 2.1.3।
4. आचार्य रामानुज (2009): श्रीभाष्य, प्रथम खण्ड, भाष्यकार आचार्य श्री ि ाव प्रसाद द्विवेदी, प्रथम संस्करण, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1.1.1।
5. बृहत्वाद ब्रह्म। तै0 उप0 ाां0 भाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2.1।
6. भवे0 उप0 भाां0 भा0, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1.1।
7. ब्रह्म भाब्दस्य हि व्युत्पाद्यमानस्य। नित्य भुाद्धत्वादयोऽर्थाः प्रतीयन्ते बृहतेधातोरर्थानुगमात्। आचार्य भांकर (2013): ब्रह्मसूत्र ाांकरभाष्य, सत्यानन्दी दीपिका, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1.1.1।
8. इदम् विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निधते पदम्। ऋग्वेद, 1.22.17 तथा या तु त्रिधातु पृथिवीमुता द्यामेको आधारा भुवनानि वि वा। ऋग्वेद, 1.154.4।
9. यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि वि वा। यो देवानां नामधा एक एव तं

संप्र   नं भुवना यन्त्यन्या।। वहीं, 10.82.3।

10. वहीं, 11.27.5, 11.27.11, 11.27.13।
11. वहीं, 11.27.16।
12. न ते विष्णो जायमानो न जातो देवा महिम्नाः परमन्तमाप। वहीं, 7.66.2।
13. तद्विष्णोः परमं पदं सदा प   यन्ति सूरयः। वहीं, 1.22.20।
14. तैत्तिरीय संहिता, 1.6,4,3।
15. ता वा एताः सर्वा ऋचः सर्वे वेदाः सर्वे घोषा एकैव व्याहृतिः। ऐतरेय उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2.1.12।
16. अष्टाध्यायी, 4.3.98।
17. भातपथ ब्राह्मण, 1.1.4.1।
18. छान्दोग्य उपनिषद्, 1.17।
19. एवमेश महा   ाब्दो भगवानिति सत्तम। परब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यत।। विष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 6.5.76।
20. आचार्य भांकर (2013): ब्रह्मसूत्र   ांकरभाष्य, सत्यानन्दी दीपिका, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 3.3.53।
21. आसुरिरपि पंचशि   ाखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम्। ई   वरकृष्ण (2012): सांख्यकारिका, श्रीगौड़पादाचार्यकृत भाष्य सहित, सटिप्पण 'चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्योपेता, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, पृ0 98, भलोक सं0 70।
22. योगभाष्य (1904): तत्त्ववै   ारदी टीका द्वारा श्री वाचस्पति मिश्र, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, पृ0 164।
23. तन्त्राणि भौवभाक्तवैष्णवभेदेन त्रिधा भिद्यन्ते। लक्ष्मीतन्त्र (1975): उपोद्घात, अडयार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेण्टर, मद्रास, पृ0 10।
24. समस्तागमसारसंग्रहप्रपंचागमसारसंग्रहरूपं ग्रन्थं चिकीर्षुः। आचार्य भांकर (2013): प्रपंचसार तन्त्र, टीका द्वारा आचार्य पद्मपाद, भाग 1, कलकत्ता संस्करण, पृ0 1।
25. वैखानसप्रक्रियायां वैखानससूत्रिणां द्विजानामेवाधिकारः; नान्यसूत्रिणां नाप्यद्विजानाम्। पूर्वोक्त।
26. पांचरात्रप्रक्रियायां तु स्वार्थे गृहार्चायजने सर्वेषामधिकारः। वहीं, तथा ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वै   यैः भाूद्रै   च कृतलक्षणैः। अर्चनीय   च सेव्य   च नित्ययुक्तैः स्वकर्मसु।। महाभारत, भीष्मपर्व, 66.39 एवं कर्मवाङ्मनसैः सम्यग्भक्तानां परमे   वरे। चतुर्णामधिकारो वै प्राप्ते दीक्षाक्रमे सति।। सात्वतसंहिता, 2.11।
27. भाास्त्रपरिग्रहः सर्वेशां वैखानसानाम्। बौधायन धर्मसूत्र, विवरण टीका सहित, टीकाकार श्री उमे   ा चन्द्र पाण्डेय, का   ी संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 3.3.17।
28. ऋग्वेद, 10.90; यजुर्वेद, 3.62, 30.31; तथा अथर्ववेद, 19.6, 10.2।
29. पांचरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम्, महाभारत, भाान्तिपर्व, 359.65–68 तथा 348. 63–64।

Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

30. ई वरसंहिता (1923)ः अनन्ताचार्य द्वारा भाोधित, कांचीसुद र्िन मुद्राक्षर ाला, मद्रास, 21.94।
31. जयाख्यसंहिता (1931)ः गायकवाड़ ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1.109—110।
32. लक्ष्मीतन्त्र (1975)ः उपोद्‌घात, अडयार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेण्टर, मद्रास, पृ0 10।
33. वासुदेवेन यत्प्रोक्त भाास्त्र भगवता स्वयम्। ई वरसंहिता (1923)ः अध्याय 1, अनन्ताचार्य द्वारा भाोधित, कांचीसुद र्िन मुद्राक्षर ाला, मद्रास, भलो0 सं0 54।
34. वहीं, भलोक सं0 56।
35. अप्राकृतदे ावि ोशप्राप्तिपूर्वकपरिपूर्णब्रह्मानन्दानुभवं एव मोक्षः। लक्ष्मीतन्त्र (1975)ः उपोद्‌घात, मोक्षस्वरूपं, अडयार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेण्टर, मद्रास, पृ0 25।
36. जयाख्यसंहिता (1931)ः गायकवाड़ ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 4.51—52।
37. पूर्वोक्त, पृ0 27।
38. लक्ष्मीतन्त्र (1975)ः अडयार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेण्टर, मद्रास, 17.49—61।
39. अहिर्बुध्न्यसंहिता, 1.63—65।
40. लक्ष्मीतन्त्र (1975)ः अडयार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेण्टर, मद्रास, 11.